ANVESHA-A Multidisciplinary E-Journal for all Researches Volume 1, Issue 2, December, 2020
Bi annual, Bi lingual, Peer reviewed, Referred Journal
Available online on: www.anveshaejournal.com e-ISSN 2582-6719

मोहन राकेश के नाट्य-साहित्य में आधुनिक भाव-बोध

डॉ. गिरीश चंद्र जोशी
एसोसिएट प्रोफेसर
श्री अरविंद महाविद्यालय (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मोहन राकेश का नाम आधुनिक हिंदी नाट्य-क्षेत्र में एक बड़ा और यशस्वी नाम है। वे उन चुनिंदा नाटककारों में से एक हैं जिनके नाट्य-साहित्य में सृजनात्मकता,प्रयोगधर्मिता के नए आयाम और मौलिक धरातल देखने को मिलते हैं। इसीलिए उनका नाम स्वातंर्त्योत्तर युग के अग्रगण्य नाटककारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण व उल्लेखनीय है। मोहन राकेश की स्वतन्त्र किस्म की शख्सियत की तरह उनकी नाटक लिखने की एक खास शैली रही है जो आधुनिक नाट्य-क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध है। हिन्दी नाट्य-क्षेत्र में, भारतेंदु हरिश्चंद्र और जयशंकर प्रसाद के बाद मोहन राकेश एकमात्र ऐसे नाटककार बनकर अवतरित होते हैं जिनके आगमन से हिंदी नाटक व रंगमंच 'अंधेरे बंद कमरों' से बाहर निकला। अतः स्वातंर्त्योत्तर युग में, यदि लीक से हटकर कोई नाम उभरकर सामने आता है तो वह नाटककार मोहन राकेश का है। उन्होंने नाटक को रंगमंच से पूर्ण रूप से जोड़ा। उनके नाटकों को रंगमंच पर मिली अपार सफलता इस बात का पुख्ता सबूत है कि नाटक और रंगमंच के बीच कोई खाई नहीं है। उनके नाटक केवल हिंदी के नाटक नहीं हैं बल्कि वे हिंदी में लिखे वो महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय नाटक हैं जो समकालीन भारतीय नाट्य-प्रवृत्तियों के द्योतक हैं। उन्होंने बहुत कम नाटक लिखे लेकिन यश, प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा सर्वाधिक प्राप्त की।

प्रयोगधर्मी प्रवृत्ति वाले मोहन राकेश स्वतंत्र किस्म की शख्सियत थे और यह भी सर्वविदित है कि उनका गृहस्थ जीवन अत्यन्त दुखदायी रहा था।'अपने देखे-भोगे हुए यथार्थ' को, अपने नाट्य-साहित्य में, आधुनिकता और समकालीन जीवनानुभव एवं अनुभूतियों को, मानव की स्वार्थ-वृत्ति को वो इसीलिए असलियत में पूरे यथार्थवादी धरातल पर पकड़ते हुए उद्घाटित करते हैं। कहना होगा कि आधुनिक मनुष्य के 'मन-भाव-स्वभाव व स्थिति-नियति' को दिखलाने, दर्शाने में नाटककार मोहन राकेश माहिर हैं। व्यक्ति व समाज की संवेदनशील अनुभूतियों,आधुनिक युग-बोध को चित्रित करने में उनका कोई जवाब नहीं। इसलिए मोहन राकेश को हिन्दी व भारतीय नाट्य-जगत में आधुनिक भाव बोध के चितेरे नाटककार के रूप में जाना-पहचाना जाता है।"व्यापक परिवेश और विविध समस्याओं को देने के स्थान पर राकेश ने आज के मनुष्य के भीतरी द्वंद्वं को ही निरंतर पकड़ा और अब इतिहास और "आभिजात्य" संस्कारों का मोह छोड़कर उन्होंने यथार्थ को सीधे अभिव्यक्ति की।"१ शहरी मध्यवर्गीय जीवन के तमाम चित्र, महानगरीय चूहा-दौड़ में भागते-हांफते व्यक्ति के खण्डित व्यक्तित्व तथा उसकी आकांक्षाओं - महत्वकांक्षाओं-कुंठाओं संग उसकी सामाजिक, पारिवारिक विसंगतियां-वर्जनाएं नाटककार मोहन राकेश को विशिष्ट एवं अलहदा बनाती है। उनकी नाट्य-कृतियां इस बात का सबूत बनीं कि आज के जीवन को, समकालीन जीवनानुभवों एवं स्थितियों को नाटक और रंगमंच में सर्वाधिक व्यापक, सार्थक तथा प्रभावी रूप में प्रस्तुत किया जाता है ।

"आषाढ़ का एक दिन"(१९५८):---यह मोहन राकेश की प्रथम और सर्वोत्तम नाट्य-कृति है जिसने उनकी अनूठी नाट्य-प्रतिभा से आधुनिक हिन्दी नाटक व रंगमंच को न सिर्फ परिचित कराया, अपितु उन्हें हिंदी व भारतीय नाट्य-साहित्य के एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाटककार के रुप में पूर्णतः प्रतिष्ठित भी किया । मूलतः यह पूरा नाटक ऐतिहासिक है लेकिन असलियत में उसमें आधुनिक भाव-बोध विद्यमान है । तीन अंकीय 'आषाढ़ का एक दिन' को १९५८ में सर्वश्रेष्ठ नाटक का 'संगीत नाटक अकादमी' पुरस्कार प्रदान किया गया और १९७१ में मणि कौल ने इस पर एक फिल्म बनाई, जिसे सर्वश्रेष्ठ फिल्म का 'फिल्म फेयर पुरस्कार' मिला ।

आलोच्य नाटक में महाकवि कालिदास के जीवनवृत्त को आधार बनाकर उसकी और मल्लिका की प्रेम-कथा की बिंबधर्मी रंग-प्रस्तुति की गई है जिसमें भावानुभूति एवं भावनाओं को प्रमुखता से दिखाया गया है। महाकवि कालिदास और उसके जीवन-संदर्भों को इसमें जिस रूप में चित्रित किया गया है, उनके विरुद्ध अनेक आक्षेप, आरोप, आशंकाएं और विवाद हैं जिनका स्वयं नाटककार ने अपने दूसरे नाटक 'लहरों के राजहंस' की भूमिका में स्पष्ट संकेत करते हुए अपनी बात रखी है' । १ वस्तुतः पूरा नाटक व्यक्ति-स्वातंर्त्य से जुडा एक यथार्थवादी नाटक

है। नाटककार का मूल मन्तव्य लेखकीय संघर्ष-निष्ठा की द्वंद्वमयी स्थिति के द्वारा आधुनिक पुरूष की यश-प्रसिद्धि-समृद्धि-पदादि पाने की तीव्राकांक्षा से पीड़ित होकर बहुत कुछ पाने की मनोवृत्ति को दिखलाना-दर्शाना मात्र है । और यही मुख्य रूप से 'आषाढ़ का एक दिन' का आधुनिक भाव-बोध है । नाटकान्तर्गत मां अम्बिका,विलोम, मातुलादि पात्रों की बेहद व्यावहारिक,भौतिकवादी और अवसरवादी दृष्टि में आज के मानव की ऐसी ही प्रवृतियों को खोला गया है। पर्दा उठने पर नाटक में सर्वप्रथम जो दृश्य-बंध उपस्थित होता है, उससे यही ज्ञात होता है कि आषाढ़ के पहले दिन की वर्षा की झड़ी में प्रेमी कालिदास के साथ जंगल से भीगकर आई नायिका मल्लिका की उल्लसित व रोमांचित भाव-दशा को देखकर उसकी मां अम्बिका किसी अपवाद की आशंका से ग्रसित है। लेकिन मल्लिका कोष की तनिक प्रवाह नहीं वह कालिदास के साथ अपने संबंध को उचित एवं व्यक्तिगत मानती है तथा स्पष्ट रूप से अपनी मां से कहती है किकृ"मैं जानती हूं मां अपवाद होता है। तुम्हारे दुख की बात भी जानती हूं। फिर भी मुझे अपराध का अनुभव नहीं होता। मैंने भावना में भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह संबंध और सब संबंधों से बड़ा है।"२ लेकिन आगे चलकर अंबिका की बातें सच सिद्ध होती हैं। इस संदर्भ में गिरीश रस्तोगी का कथन है किः--''राकेश ने आधुनिक मानव के द्वंद और जटिलता को पकड़ना चाहा है इसलिए यहां ऐतिहासिकता और आधुनिकता का समन्वय नहीं है ना ऐतिहासिकता की प्रमाणिकता और युगीन समस्याओं के संकेत अलग-अलग दिए गए हैं बल्कि आरंभ से अंत तक बहुत अधिक सुख स्तर पर यह नाटक आज के यथार्थ को आधुनिकता को व्यक्त करता चलता है।"

३ समीक्षा नाटक में नाटककार मोहन राकेश ने इतिहास का सहारा लेकर भारतीय इतिहास के महाकवि कालिदास के चरित्र की जो रंग-प्रस्तुति दी है, निःसंदेह वह विवादास्पद है। परंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि नाटक व्यक्ति-स्वातंर्त्य और व्यक्तित्व की आवेगमयता व महत्वकांक्षी-मन से संबद्ध है और नाटककार आधुनिक युग में अन्तर्द्वंद्वं से ग्रसित ऐसे मानवी-चरित्रों को दिखाने हेतु ऐसा आयोजन करता है । हां, पाश्चात्य विद्वान स्लेलिगर के शब्दों में यह जरूर कहना होगा कि इतिहास से कथानक को ग्रहण करते हुए रचनाकार को इतिहास के ज्ञात-तथ्यों से बहुत दूर नहीं भटक जाना चाहिए। मोहन राकेश ने स्वयं कहा है, कि--'मेघदूत पढ़ते हुए मुझे लगा करता था कि वह कहानी निर्वासित यक्ष की उतनी नहीं है, जितनी स्वयं आत्मा से निर्वासित उस कवि की, जिसने अपनी एक अपराध अनुभूति को इस परिकल्पना में ढाल दिया है।''४ इस प्रकार कहा जा सकता है कि आधुनिक भाव-बोध के सशक्त नाटककार मोहन राकेश ने व्यक्ति के आंतरिक संघर्ष को युगीन-परिप्रेक्ष्य में दिखलाने की जो कोशिश विवेच्य नाटकान्तर्गत की है वह अपनी इस अनूठी विषयवस्तु के कारण ही सामाजिक को प्रेक्षागृह में खींच लाती है।

डा.नगेन्द्र ने कहीं उचित कहा है कि 'आषाढ़ का एक दिन' महाकवि कालिदास के परिवेश, रचना- प्रक्रिया प्रेरणा-स्रोत और उनके चूक जाने से संबद्ध है। यह दो प्रकार के संघर्षों पर आधारित है-- परिवेशमूलक और आंतरिक संघर्ष। आषाढ़ के एक दिन से इस संघर्ष का आरंभ हुआ और आषाढ़ के एक ही दिन वह समाप्त हुआ। इन दो दिनों के दीर्घ अंतराल को कालिदास और मल्लिका की पीड़ा ने भरा है--कालिदास में अहम् की पीड़ा है तो मल्लिका में रचनात्मक उत्सर्ग की।"

लहरों के राजहंस(१९६३):-यह मोहन राकेश का दूसरा प्रसिद्ध नाटक है जिसमें इतिहास-कल्पना मिश्रित परिवेशान्तर्गत आधुनिक मानव के द्वंद्व एवं तनाव की नाटकीय कथा को बखूबी पेश किया गया है । नन्द और सुन्दरी नाटक के प्रधान पात्र,नायक-नायिका हैं जबकि गौतम बुध को यशोधरा सूच्य पात्र हैं। नंद गौतम बुद्ध का सौतेला भाई है और गौतम बुद्ध केआने से वह बहुत खुश है। लेकिन उसकी रूपवती-पत्नी सुंदरी उसी रात भवन में कामोत्सव का विशेष आयोजन कर रही है, जिस रात की सुबह उसकी ज्येष्ठा यशोधरा बौद्ध धर्म की दीक्षा लेने वाली है। सुंदरी के लिए जीवन की परिभाषा ही अलग है--वह अपनी सोच में जीना चाहती है। उसकी सोच भोग-विलास की है--उसे जीवन के भोग-विलास बहुत पसंद है। नन्द पत्नी सुन्दरी से बहुत प्रेम करता है किंतु वह आध्यात्मिक शांति पाना चाहता हैकृयही उसकी सबसे बड़ी दुविधा है। वह तय नहीं कर पाता है कि वह क्या चाहता है इसलिए वह भटकता रहता है। वस्तुतः नंद का मन अस्थिर है। नाटककार ने नंद और उसकी रूपवती पत्नी सुंदरी के आंतरिक संघर्ष को ही अपने इस पूरे नाटक में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार नाटकीय वस्तु की प्रतीकात्मकता एक युग निरपेक्ष-सत्य को प्रेक्षकों के समक्ष पेश करती है ।

मूलतः अपने संपूर्ण ऐतिहासिक परिवेश में 'लहरों के राजहंस' आज के व्यक्ति के मानसिक संघर्ष को ही दिखलाता-दर्शाता है। बौद्धकालीन ऐतिहासिक परिवेश में नाटककार नंद और सुंदरी दोनों के आंतरिक संघर्ष एवं वैयक्तिक अंतर्द्वंद्वं के माध्यम से यही कहना चाहता है

कि कोई भी किसी को अपने द्वंद्वं, अंतर्द्वंद्वं से मुक्त नहीं कर सकता। हर व्यक्ति को खुद ही प्रयास करना पड़ता है अपने द्वंद्वं से मुक्ति का। और यह भी, कि एकतार जीवन बिताकर लोग अपने से ऊब जाते हैं। तब जहां कुछ भी नवीनता दिखाई देती है, वे उसी की ओर उमड़ पड़ते हैं । नंद-सुंदरी के आपसी द्वंद्व-तनाव का यही सार और आधुनिक भाव-बोध है ।

"अपनी डायरी के पन्नों में एक स्थान पर राकेश ने लिखा है" जीना, चाहते हो तो तुम्हें जीना चाहिए, सिर्फ जीने की बात सोचते रहने का कोई अर्थ नहीं। स्पष्ट है कि यहां राकेश का जीने का अर्थ समग्रता के साथ तथा संपूर्णता के साथ जीना है। इस प्रकार जीना, जिसमें व्यक्ति का संपूर्ण अस्तित्व सिमट जाए। जीवन की सभी सुख-सुविधाओं से पूर्ण सुंदरी के कक्ष से कटकर बार-बार नंद का आखेट के लिए जंगल में जाना नंद के संशयग्रस्त प्रश्नाकुल मन की स्थिति की ओर संकेत करता है। पार्थिवता से हटकर जीवन में उपलब्धि की खोज में निकला नंद बार-बार लौटने के लिए अभिशप्त है। क्योंकि मात्र अपार्थिव जीवन मूल्य उसके व्यक्तित्व को समेत नहीं पाते। नंद की यह भटकन अस्तित्व की पहचान की भटकन है।"'५ जिससे आधुनिक मानव बहुत पीड़ित है--यह उसकी नियति-विडम्बना ही है कि जीवन को समग्रता से जानने और उसको सम्पूर्णता से जीने की बेकली में वह सांसारिक सुख-सुविधाओं के ढेरों साधन जुटाता है मगर उसे मानसिक या आध्यात्मिक शांति नहीं मिलतीदृ और यह भटकाव या भटकन ही जैसे उसके व्यक्तित्व-अस्तित्व की एक पहचान बन जाती है ।

आधे अधूरे(१९६९):--नाटककार मोहन राकेश की अगली महत्वपूर्ण रचना 'आधे अधूरे' हैं जो उनकी नाट्य-रचनाओं में सर्वाधिक चर्चित, प्रसिद्ध और पर्याप्त विवादास्पद होने के साथ पूर्णतः आधुनिक भाव-बोध से संपन्न है और इस दृष्टि से हिंदी नाटकों के इतिहास में यह 'मील का पत्थर' साबित होती है। यह नाटक अपने रचनाकाल से ही पाठकों व दर्शकों में इतना लोकप्रिय हुआ कि यह लगातार और बार-बार प्रकाशित-मंचित होता रहा और इस यथार्थवादी नाटक के साथ मोहन राकेश हिंदी और भारतीय नाट्य-साहित्य में एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण, उल्लेखनीय और स्थापित नाटककार के रूप में प्रख्यात हो चले । 'आधे अधूरे' के केंद्र में मध्यवित्तीय स्तर से ढ़हकर निम्नवित्तीय स्तर पर आया एक महानगरीय परिवार है।राकेश ने विवेच्य नाटक की कथावस्तु, बदलते आधुनिक परिवेश में स्त्री-पुरुषों और युवा-पीढ़ी की बदलती सोच-एप्रोच से प्रेरित-प्रभावित होकर लिखी है।नायिका सावित्री के चारित्र्य में महानगरीय कामकाजी नारी की बदलती मानसिकता व मजबूरियों की दास्तां का निरूपण है । नाटकान्तर्गत नौकरीपेशा नारी व उसके परिवार के सदस्यों की जो बनती-बिगड़ती जिंदगी प्रदर्शित की गई है, वह आज के अधिकांश शहरी परिवारों में कमोबेश देखने को मिलती है। नाटककार सावित्री को जिस तरह से परिवार-पालन हेतु संघर्ष करते हुए उसकी मनोदशा को दिखलाता है, वह आज के मानव के बदलते व्यक्तित्व,सामाजिक अकेलापन-बेगानापन, परिवर्तित बेहिसाब आकांक्षाओं, मूल्यहीनता और अपने अधूरेपन में पूरेपन को खोजने का परिचायक ही है। "राकेश की दृष्टि में यह बेगानापन महसूस होना एक परिवार की नियति नहीं है,वह आज की दुनिया में हर व्यक्ति की अनुभूति है, यही उसकी त्रासदी है जो उसके जीवन को बड़ा कटु और करुण बनाती जा रही है लेकिन आदमी को इस त्रासदी को अंततः झेलना ही है। सारी कटुता और तनाव के बावजूद जिंदगी एक ढर्रे पर चलती रहती है। कई बार कटने पर भी बार-बार फिर वहीं लौट आती है। इस स्तर पर यह नाटक मानवीय स्थिति की कुरूपता को भी सांकेतिक ढंग से चित्रित करता है।"'६

निःसन्देह, कथ्य के धरातल पर 'आधे अधूरे' महानगरीय जीवन में रहने वाले मध्यवर्गीय परिवार के जीवन में आ गए बेहिसाब अंतर्विरोधों और अनियंत्रित विसंगतियोंकृ 'अपने अधूरे- पन में पूरेपन को खोजने के प्रयास' को ठोस यथार्थवादी शैली में दिखाता है। इसमें आज के बदलते परिवेश में शहरी परिवार की अभावपूर्ण-तनावपूर्ण-यातनापूर्ण अर्थात् 'आधी अधूरी जिंदगी' की नाटकीय-कहानी को इस अंदाज में पेश किया गया है कि लगता है जैसे उसके पास इसके अलावा और कोई विकल्प ही नहीं है, कि जैसे घुटन से भरा होने पर भी परिवार का प्रत्येक सदस्य एक साथ रहने को बाध्य है। विवश-स्थितियों में जीते हुए भी मरे हुओं के समान रहना उनकी सबसे बड़ी त्रासदी है। और महानगरीय जीवन में "अब तो ऐसे परिवारों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। आधुनिक बनने का जो शौक नई पीढ़ी में आता जा रहा है वह आज के मनुष्य को ऐसा लगता है कि विकलांग बना देगा, जिसमें पति-पत्नी और बच्चों का दम घुट कर रह जाएगा। आर्थिक अभावों से ग्रसित पुरानी मान्यताओं को तोड़ने में व्यग्र, नई मान्यताओं को प्रतिष्ठापित करने में असमर्थ, आत्मगोपन में रत, वर्तमान नागरिक जीवन में अनेक परिवारों की यही कहानी है।"'७

पैर तले की जमीन(१९७५):--यह मोहन राकेश की अंतिम पर अधूरी नाट्य-कृति है जिसका प्रकाशन उनकी मृत्यु के बाद हुआ। प्रसिद्ध कहानीकार कमलेश्वर ने इस अधूरी लिखी गई नाट्य-कृति और राकेश को 'मेरा हमदम:मेरा दोस्त' मानते हुए इसे पूर्ण किया। इसका पूरा मसौदा राकेश ने अपनी डायरी में लिख रखा था, जो नटरंग' नाट्य-पत्रिका के २१ वें अंक(मोहन राकेश की स्मृति को समर्पित) में छपा है।

नाटक में भय और मृत्यु के समक्ष, सभी पात्र 'आधे अधूरे' की तरह ही अपने अंदर के खोखलेपन से लड़ रहे हैं। चारों ओर के बिखराव, बैचेनी, खालीपन और अस्त-व्यस्तता के बीच वे अपनी कुंठाओं,ग्रंथियों और विकृतियों में आकंठ धंसे हुए हैं। आधुनिकता और बदलते परिदृश्य में अनैतिकता और मूल्यहीनता व्यक्ति की मनः-स्थिति को कैसे परिवर्तित कर रही हैकृयह सबकुछ यह नाटक दिखाता है।

कुल मिलाकर,आज के मानव के भीतरी द्वंद्वं, सामाजिक अकेलेपन,कुंठा-घुटन-संत्रास-अधूरेपन-खालीपन-बिखराव -भटकावादि से मोहन राकेश का नाट्य-साहित्य भरा पड़ा है और इस रूप में आधुनिक मनुष्य की विभिन्न मनोस्थितियों, भाव-दशाओं एवं नियति को दर्शाने में माहिर नाटककार मोहन राकेश आधुनिक भाव-बोध सम्पन्न एक प्रयोगधर्मी ।रंगकर्मी सिद्ध होते हैं।

संदर्भ-सूचीः-

१. समकालीन हिंदी नाटक की संघर्ष चेतना,डा.गिरीश रस्तोगी, हरियाणा साहित्य अकादमी चंडीगढ़, १९९०, पृ. ३५
२. लहरों के राजहंस , मोहन राकेश, पहली भूमिका,पृ. ७-८
३. मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक,संपादक नेमिचन्द्र जैन , राजपाल एंड संस, दिल्ली, संस्करण१९९३।,पृ.३२
४. मोहन राकेश और उनके नाटक, गिरीश रस्तोगी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण १९८९, पृष्ठ ६५
५. लहरों के राजहंस, मोहन राकेश,१९६३, भूमिका में
६. मोहन राकेश का साहित्य, वीरेंद्र मेहंदीरत्ता, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, प्रथम संस्करण १९९०, पृ. ४२
७. मोहन राकेश और उनके नाटक, गिरीश रस्तोगी, पृ. १०३
८.स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक, डहृ रामजन्म शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण१९८५, पृ.२७०-२७१